INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN : 2277-7881
VOLUME 1, ISSUE 3, AUG 2012

गुरू जम्भेश्वर – जीवन परिचय

– राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, शोध छात्र
सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (राजस्थान)

गुरू जम्भेश्वर का आविर्भाव

गुरू जम्भेश्वरजी का जन्म जिस युग में हुआ वह भक्ति आन्दोलन युग के नाम से जाना जाता है। भक्ति आन्दोलन के प्रणेता रामानंद (सन् 1299 से 1410 ई.) को माना जाता है जिन्होंने इस आन्दोलन को दक्षिण प्रांरभ किया था। कबीर ने इस भक्ति आन्दोलन को सप्तदीप नवखंड में फैलाया था। इस भक्ति आन्दोलन का प्रभाव समस्त पूर्व, पश्चिम, उत्तर और मध्य भारत तक फैला हुआ था। राजस्थानी, मराठी, गुजराती, बंगला, अवध, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि समस्त भाषाओं का साहित्यिक श्रीगणेश भक्ति काल से माना जाता है।

आज के युग में कोई भी व्यक्ति अवतारवाद में विश्वास नहीं करता है और इसे केवल एक कपोल कल्पना और अंधविश्वास माना जाता है। परन्तु भक्ति–आंदोलन के युग में ऐसा नहीं था और शैव, शक्ति, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्म अवतारवाद में विश्वास करते थे। विद्वानों के मतानुसार अवतारवाद का विकास वैदिक युग के बाद हुआ है। यहां तक कि श्रीमद्भगवत गीता में अवतारवाद के कारणों का भी उल्लेख मिलता है। पहले अवतार छह माने जाते थे, बाद में दस माने गये उसके बाद यह संख्या चौबीस हो गयी। भक्ति आंदोलन के युग में भगवान के अवतार में ही नहीं, संतों

के अवतारों में भी विश्वास किया जाने लगा था। इतना ही नहीं कबीर ने अवतारवाद का विरोध किया, उन्हें भी ज्ञानी जी का अवतार मान लिया गया। जोम्भोजी को भी उनके अनुयायी विष्णु का पूर्णावतार मानते है। नर में नारायण के दर्शन ही भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता रही। उस युग में जिन महापुरूषों ने जन्म लिया उन्हें किसी न किसी देवता का अवतार माना गया।

जाम्भोजी के अविर्भाव के संबंध में इसी प्रकार की धारणा विश्नोई पंथ में परम्परा से प्रचलित है कि "जब नारायण ने नृसिंह अवतार लेकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी, उस समय प्रह्लाद ने भगवान से एक वर मांगा था कि वे युग–युग में जीवों के उद्धार के लिए अवतार लें। भगवान ने भक्त को वचन दिया और मत्स्यादि अवतार धारण करने वाले वही भगवान त्रेता में श्री रामचन्द्र, द्वापर में श्री कृष्ण और इसी अनुक्रम में कलयुग में जाम्भोजी अवतरित हुए।" विश्नोई पंथ के साहित्य में किंचित हेरफेर से अनेक स्थानों पर यही कथा वर्णित हुई है।

राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति

राजस्थान की मरूधरा पर जिस समय जाम्भोजी का प्रादुर्भाव हुआ था उस समय दिल्ली के सिंहासन पर लोदी वंश का अधिकार था और सिकंदर लोदी उस समय दिल्ली का बादशाह था। लोदी बहुत धर्मान्ध एवं क्रूर शासक था। उसने हिन्दूओं पर बहुत अत्याचार किये तथा बड़ी संख्या में हिन्दुओं की हत्या करवा दी। यहां तक कि कबीर को मारने के लिए उसने उन पर हाथी से रौंदाया तथा गंगा में डुबाने का प्रयास किया। लोदी के बाद मुगलवंश के सभी शासकों ने हिन्दुओं प्रति अच्छा व्यवहार नहीं रखा। राजस्थान में उस समय 'ग्रासियाराज' के रूप में अधिकांश उत्तर–पश्चिम क्षेत्र पर जाटों का स्वामित्व था। जिसमें मोहिल, खींची एंव सांखलों राजपूतों के

छोटे–छोटे राज्य थे। जोधपुर के राव जोधाजी को अपना राज्य स्थापित किये अधिक समय नहीं हुआ था और राव बीका बीकानेर राज्य की स्थापना करने के प्रयत्न कर रहे थे। अतः यहा कहा जा सकता है कि जिस समय जाम्भोजी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय यह क्षेत्र अधिकांश जंगल एवं मरूस्थल प्रधान होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता था।

जाम्भोजी के आविर्भाव के समय देश की सामाजिक स्थिति भंयकर रूप से डांवा –डोल थी। मुसलमानों की धर्मान्धता अपनी चरम सीमा पर थी जिससे हिन्दू बड़े त्रसित थे। मुसलमान शासकों द्वारा मूर्तियों, मंदिरों का विध्वंस, हिन्दू समाज पर अत्याचार, बलात् धर्म–परिवर्तन आदि बातें उस समय साधारण मानी जाती थी। सामाजिक दृष्टि से हिन्दुओं के लिए वह समय संकटकाल था। हिन्दुओं को 'जाजिया' नामक कर भी देना पड़ता था।

ऐसी विपरित सामाजिक परिस्थितियों के कारण मरूप्रदेश के जनजीवन पर चारों ओर अशिक्षा, निराशा, जड़ता, संस्कारहीनता और अनैतिकता का बोलबाला हो गया। आचार, विचार, पवित्रता, शील आदि गुण जनमानस के पटल से हट चुके थे। इसके अतिरिक्त अकाल एवं अनावृष्टि आदि प्राकृतिक आपदाओं ने भी मानव जीवन को संकट में ड़ाल रखा था। जोम्भोजी के प्रादुर्भाव के समय बार–बार अकाल पड़ने का उल्लेख मिलता है। सारे प्रदेश में फूट पड़ी हुई थी तथा चारों ओर असत्य, छल और कपट का बोलबाला था। लोगों के दिमाग में मानसिक दुर्बलताओं ने घर कर लिया तथा वे संशयी होकर अंधविश्वासी और रूढ़िवादी हो गये। पाखण्डी लोगों ने विभिन्न देवी–देवताओं एवं भूत–प्रेतों एवं अदृश्य कल्पित शक्तियों का आश्रय लेकर लोगों को लूटने लग गये थे। अतः यह कहा जा सकता है कि जाम्भोजी के प्रार्दुभाव के समय

मरूप्रदेश की सामाजिक स्थिति बहुत खराब थी तथा चारों ओर अंधविश्वास, कुरूतियों एवं रूढ़ियों ने जनमानस को जकड़ रखा था।

जाम्भोजी के अविर्भाव के समय खराब सामाजिक स्थिति के कारण उस समय मरूप्रेदश की धार्मिक स्थिति भी खराब थी। लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल गये और उनकी वैदिक धर्म की पूजा एवं यज्ञ के प्रति कोई रूचि नहीं रही थी। लोग आचार–विचार और धर्म–आस्था से शून्य हो चुके थे। जनता को पाखंड जाल में फांसने के लिए अनेक जमाती साधु शरीर पर भस्म, सिर पर लम्बी जटाएं, कमर में लोहकच्छ धारण कर लोगों को कल्पित देवी–देवताओं एवं भूत–प्रेतों के नाम से डरा कर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। ये पाखंडी साधू भांग, मांस–मदिरा आदि का सेवन करते थे तथा लोगों को अपनी तांत्रिक विद्या से प्रभावित करते थे।

जाम्भोजी का आविर्भाव उपरोक्त विपरित राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिणाम स्वरूप ही हुआ था। जाम्भोजी ने उपरोक्त विपरीत परिस्थितियों को रोकने के लिए पाखंडियों को ललकारा अपने आध्यत्मिक उपदेशों से लोगों अज्ञान दूर करने का प्रयास किया। जाम्भोजी ने केवल आमजन को ही नहीं अपितु कई पाखण्डी साधुओं को भी अपने सद् उपदेशों से सही मार्ग दिखाया तथा उन्हें सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर

गुरू जम्भेवर – जीवन परिचय

जाम्भोजी के जीवन काल को हम तीन चरणों में बांट कर अध्ययन कर सकते है –

(1) बाल्य काल (1451 से 1458)

(2) [illegible]

(3) सम्प्रदाय प्रवर्तन और ज्ञानापेदश

(1) प्रथम चरण – बाल्य काल

गुरू जम्भेश्वर का बाल्यकाल सन् 1451 से 1458 ईस्वी तक रहा। ऐसा कहा जाता है कि गर्भ में रहते हुए जाम्भोजी ने माँ को जरा भी पीड़ा का अहसास नहीं होने दिया। वे गर्भ में भी इतने शांत रहे कि कभी–कभी यह लगता था कि कहीं बच्चा निर्जीव तो नहीं है। जन्म के बाद जाम्भोजी ने न तो जन्म घूंटी ही ली और न ही माँ का स्तनपान ही किया जबकि वे जन्म के समय एकदम स्वस्थ दिखाई देते थे।

केसौजी ने एक सवैये मे इस बात का उल्लेख किया है कि वे पीठ के बल नहीं लेटते थे। वे माँ के दूध के अलावा कोई भी दूध नहीं पीते थे और न ही खाना खाते थे। वे बोलते भी नहीं थे। इन्हीं लक्षणों कारण उन्हें लोग गहला (पागल) कहते थे। माता–पिता इनकी विचित्रताओं से बहुत चिंतित रहते थे और उन्हें उपचार के लिए ओझों, तांत्रिकों, हकीमों के पास ले गये पर किसी भी टोने–टोटके, तंत्र–मंत्र का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सुरजन जी ने कथा परसिद्ध में लिखा है –

पलक न फुरकै, पीठिधर उदक न नींद अहार।

नर गुरू भेद न जाणंई, नर देही निरहार।।

अर्थात् जाम्भोजी की पलकें स्थिर थी और वे धरती पर अपनी पीठ नहीं लगने देते थे। अर्थात् पीठ के बल लेटते भी नहीं थे, न पानी पीते थे, न खाते थे और न सोते ही थे। जन सामान्य लोग जाम्भोजी के इस अलौकिक व्यवहारों का नहीं समझ पाये कि निराहार रहकर मनुष्य शरीर स्थिर कैसे रह सकता है।

राजस्थान में ईसा की पंद्रहवी शताब्दी तक नामपंथियों ओर शाक्तों का प्रभाव रहा था। चौदहवीं–पंद्रहवी शताब्दी में भक्ति–आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप सिद्धों नाथों

तथा तांत्रिकों के प्रति लोगों के मन में आकर्षण कम हो गए थे और भाव या स्वभाव प्रधान भक्ति का आकर्षण प्रबल हो गया था। जाम्भोजी द्वारा दूध न पीने, भोजन न करने, गूँगे की तरह चुपचाप रहने पर उनके माता–पिता जब उन्हें ओझों–हकीमों और तांत्रिकों के पास ले जाते थे तथा उनके द्वारा तरह–तरह के टोने–टोटके आजमाते थे। परन्तु अंत में सभी तंत्र–मंत्र, टोने–टोटके अंत में व्यर्थ हो जाते थे। जाम्भोजी के साहित्य में इन भोपों और तांत्रिकों की असफलताओं को बार–बार उल्लेख किया गया है। जाम्भोजी द्वारा रचित सबदवाणी के गद्य एवं पद्य के प्रसंगों में उल्लेख मिलता है कि जाम्भों जी ने अपने तेज से सिद्धों–तांत्रिकों को निस्तेज कर दिया था।

जम्भोजी के बारे में यह कहा जाता है कि वे बाललीला एवं पशुचारण लीला के चौंतीस सालों तक एक शब्द नहीं बोले। परन्तु वास्तविकता यह थी कि बाल्यकाल में वे आश्यकतानुसार बोलते थे तथा अधिकतर मौनावस्था में ही रहा करते थे। सिद्ध एवं अवतारी पुरूषों का मौन धारण करना आदिकालीन परम्परा रही है। ऐसा कहा जाता है कि सात वर्ष की आयु में जब एक श्मशान–सेवी तांत्रिक के पास उपचार के लिए ले जाया गया तो श्मशान–सेवी तांत्रिक को फटकारने के लिए उन्हें प्रथम सबद का उच्चारण किया था। जाम्भोजी एक अवतारी पुरूष थे और मितभाषी थे। वे तभी बोलते थे जब बोलना अतिआवश्यक हो जाता था अन्यथा वे मौनावस्था में ही रहा करते थे। उनकी इसी भावदशा के कारण उन्हें लोग गहला कहते थे। परन्तु यह उनकी मौन साधना थी जो जनसामान्य की समझ से परे थी।

जाम्भोजी को बाल्यकाल से ही जीवमुक्त पुरूष के लक्षण जैसे – खाने–पीने के प्रति अरूचि थी, सामान्य लोक–व्यवहार से भिन्न व्यवहार, शारीरिक जरूरतों के प्रति लापरवाही आदि परिलक्षित होने लग गये थे। जाम्भोजी लोकधर्म एवं शारीरिक

आवश्यकताओं से उपर उठ कर शरीरधर्मी से आत्मधर्मी बन गए थे। वास्तव में उनका मौन रहना और गहला जैसा दिखना भी जीवमुक्त पुरूष के लक्षण थे।

(2) द्वितीय चरण – पशु चारण एवं साधना

सात वर्ष की उम्र तक बाल्यकाल बिताने के बाद जाम्भोजी ने अपने पिता के पशुपालन व्यवसाय में हाथ बंटाना शुरू कर दिया था। अन्य चरवाहों की भांति न उन्हें खाने के लिए रोटी की आवश्यकता थी और न ही पीने के लिए पानी की। पशुओं को सयमित रखने के लिए उन्हें कभी डंडे की आवश्यकता नहीं पड़ी। वन में खुद के पशुओं के साथ–साथ वन के अन्य पशु–पक्षी भी उनसे उतना ही प्रेम करते थे। उनके पशुओं को न तो कोई चुराता था ना ही उनको कोई अन्य पशु सताता था। सारे पशु–पक्षी एवं पशुपालक उनकी आज्ञा का पालन करते थे। वास्तव में जाम्भोजी को पशु चारणकाल में जंगल में एकान्तवास का पर्याप्त समय मिलता था।

जाम्भोजी के पशुचारण के समय के दिनों में एक दिन पीपासर में जोधावत दूदा एक जलाशय के पास डेरा डाले हुए थे। जाम्भोजी जिनकी उम्र उस समय 11 वर्ष थी, उस जलाशय के पास पहुँचे और उन्हें पानी पिलाने लगे। वे जिस पशु को आदेश देते थे वही पानी पीने लग जाता था। शेष आदेश की प्रतीक्षा में रूके रहते थे। दूदा यह देखकर आश्चर्य से अचंभित रह गये। पशुओं पर उनके नियंत्रण को देखकर दूदा को उनकी अपार शक्ति का अहसास हो गया। राव जोधा के पुत्र दूदा को उन दिनों मेड़ता से देशनिकाला दे दिया गया था। वे मेड़ता पुनः प्राप्त करना चाहते थे। अतः जाम्भोजी की महत्ता को देखकर वे उनके चरणों में पड़कर पुनः मेड़ता प्राप्त करने का आशीर्वाद देने के लिए कहा। जाम्भोजी ने दूदा की विनम्रता को देखते हुए उन्हें काठ की तलवार

भेंट की और मेड़ता पुनः प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। जाम्भोजी के आशीर्वाद से दूदा ने छः वर्ष के भीतर 1968 ईस्वी में मेड़ता पर पुनः अधिकार कर लिया।

जाम्भोजी जन्मजात योगी थे। वे आजीवन अखंड ब्रह्मचारी रहे और उन्होंने विवाह नहीं किया। जब तक उनके पिता लोहटजी एवं माता हाँसा देवी जिन्दा रही, वे घर–परिवार से जुड़े हुए रहे। सन् 1463 ईस्वी में पिता लोहट जी तथा उसके पाँच वर्ष बाद माता हाँसा का स्वर्गवास होने के पश्चात् उन्होंने घर–परिवार, सम्पति का परित्याग कर दिया और पीपासर से सम्भराथल आ गए। यहीं रहते हुए उन्होंने चौतीस वर्ष की आयु में संवत् 1485 ई. की कार्तिक बदी अष्टमी को विश्नोई सम्प्रदाय का प्रर्वतन किया।

(3) तृतीय चरण : संप्रदाय प्रवर्तन और ज्ञानोपदेश

जिन दिनों उत्तर भारत में वल्लभाचार्य (1446 ई.), पंजाब में गुरू नानक (1466 से 1538 ई.), राजस्थान में मीरा बाई (1449 ई.), नदिया (नवद्वीप) में महाप्रभु चैतन्य (1466 से 1533 ई.) तथा उत्तर भारत में गोस्वामी तुलसीदास (1532 से 1623 ई.) ने अवतरण लिया था, ईसा की उन्हीं शताब्दियों (1451 से 1536 ई.) में गुरू जम्भेश्वर का अवतरण हुआ।

विश्नोई संप्रदाय में दीक्षित होने वाले पहले व्यक्ति पूल्होजी के कथनानुसार कार्तिक वदी अष्टमी को सम्भराथल पर स्नान कर हाथ में माला और मुख में जाप करनते हुए जाम्भोजी ने कलश स्थापित किया और विश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

सन् 1485 ई. में विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना के बाद से लेकर 1536 ई. के इक्यावन वर्षों के समय को उन्होंने अपने भक्तों को उपदेश देने तथा उनके उद्धार का मार्ग प्रशस्त करने में लगाया। उन दिनों में उनके श्रीमुख से जो उपदेश के रूप में जो

वाणी फूटी, उस 'सबदवाणी' को उनके भक्त अत्यंत पवित्र ही नहीं, अंतिम सर्वोच्च प्रमाण मानते है। जाम्भोजी ने अपने उपदेशों में लोगों का सच्चाई, ईमानदारी, पवित्रता, कर्मठता और सदाचार के मार्ग पर चलने को कहा। उनकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं नहीं था। उन्होंने लोगों से पाखण्ड एवं आडम्बरों से दूर रहने तथा जीव मात्र चाहे वह पशु–पक्षी हो या पेड–पौधे सबकी रक्षा करने का संदेश दिया। जाम्भोजी ने आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व पर्यावरण की रक्षा का संदेश दिया था। जिस पर्यावरण को लेकर आज विश्व इतना चिंतित है, जाम्भोजी ने उसी की रक्षा के लिए इतनों वर्षों पहले पर्यावरण को बचाने के लिए आंदोलन खड़ा कर दिया था। उनके इस आंदोलन का उनके अनुयायियों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा की उनके कई अनुयायियों ने पर्यावरण को बचाने के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिये।

जिस वर्ष जाम्भोजी ने विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की उस वर्ष राजस्थान में भीषण अकाल पड़ा हुआ था। सम्भराथल में रहते हुए उन्होंने अकाल पीड़ितों की अन्न, धन्न से सहायता की। उन्होंने विशेषकर पशुधन की बहुत सेवा की। उन्होंने उपदेश देकर लोगों को सही मार्ग सुझाया तथा समस्त जीवदया और समस्त सचराचर की रक्षा के लिए अनुयायियों की सेना खड़ी कर दी। इनमें सभी जातियों, धर्मों, वर्गों और पेशे के लोग शामिल थे। जाम्भोजी के परोपकारी वृत्ति एवं आकर्षक व्यक्तित्व ने लोगों पर जादुई असर डाला। वे लोगों की शंकाओं और जिज्ञासाओं का समाधान बहुत ही सहज और सरल तरीके से करते थे। कई लोग उनके पास सिद्धिपरिचय के लिए भी आते थे। बहुत सारे लोग उनके व्यक्तित्व और संप्रदाय की ओर इस लिए भी आकृष्ट हुए कि लोग बड़ी संख्या में उनके अनुयायी बन रहे थे। कुछ लोग उनके पास अपनी कार्य–सिद्धी के लिए भी आते थे, उनके दरबार में जो आया वो कभी खाली हाथ

वापिस नहीं गया। दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी तक को उन्होंने ज्ञानापेदश द्वारा सुपथ पर चलने की प्रेरणा दी।

1484 ई. के आसपास के समय में राजस्थान में लगातार भीषण अकाल की स्थिति बनी रही। जाम्भोजी ने विपत्ति की इस घड़ी में अकाल पीड़ितों, विशेषरूप से बेजुबान पशुओं की रक्षा की और समस्त जीव रक्षा तथा समस्त जड़–चेतन पर्यावरण के की रक्षा के लिए विलक्षण कार्य किया। राजस्थान में बार–बार पड़ रहे इन्हीं अकालों ने राजस्थानवासियों को पर्यावरण की रक्षा करना सिखाया। जाम्भोजी ने लोगों को पशु–पक्षियों की हत्या रोकने, मांस नहीं खाने, हरे–भरे पेड़ों का नहीं काटने का उपदेश दिया। जाम्भोजी ने लोगों को अफीम, भांग, तम्बाकू, मदिरा आदि का सेवन न करने की सलाह दी। इन सभी बुराईयों को दूर करने के लिए जाम्भोजी ने उन्नतीस नियमों का प्रतिवादन किया।

ऊदोजी नैण सम्प्रदाय के व्याख्याता माने जाते है। ऊदोजी नैण मरूभाषा के बहुत प्रसिद्ध कवि माने जाते थे। जाम्भोजी के ने एक 'सबद' (संख्या 22) में देवी उपासक ऊदोजी नैण को उपदेश दिया था जो कि सन् 1488 ई. से 1493 ई. के बीच जाम्भोजी के सम्पर्क मे आये थे। यह उपदेश इस प्रकार था –

'भाई, अगर मन माने तो विसन–विसन का जाप किया करो। निठल्लों की तरह सोए मत रहो। दिन का भूला रात को भी अपनी गलती न समझ पाए तो फिर भगवान् ही मालिक है। आखिर तुमने मन में आशा क्या बांध रखी है? अरे भाई, कहीं भी तुम्हारी कुशलता नही दिखाई देती। अतः चेतो। हृदय में भगवान विष्णु के नाम का जाप करो और हाथ से सेवा करो। हम से हरि की मर्यादा को बड़ी मान नहीं सके। आराध्य की महिमा को याद ही नहीं कर पाए। जान लो कि गुरू के बिना छुटकारा

नहीं मिलता। प्रिया पत्नी, प्रिय वस्तुएँ, भाई–बहनें कौन किसका है? इन्हीं प्रपंचों में फंसी हुई दुनिया उस सुरराज को नहीं पहचान पाती। अतः विसन–विसन जपो। विष्णु का जाप करने वाले पाँच करोड़ भक्तों को प्रहलाद ने मोक्ष दिलाया था, सात करोड़ को साथ लेकर राजा हरिश्चन्द्र स्वर्ग गये थे। नव करोड़ को कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने तारा था। मैं बचे हुए बारह करोड़ को मोक्ष देने–दिलाने आया हूँ।"

जाम्भोजी ने अपने सबद से नेतसी सोलंकी को मल्लूखाँ के बंधन से मुक्त करवाया था। 'सबदवाणी' के 66 तथा 67 संख्या वाले सबद जाम्भोजी ने मल्लूखाँ को समझाने के लिए ही कहे थे। मल्लू खाँ जाम्भोजी से इतना प्रभावित हुआ कि न केवल उसने नेतसी सोलंकी को अपने बंधन से मुक्त किया बल्कि मल्लू खाँ पर उनके उपदेशों का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने गोहत्या बंद करवा दी और स्वयं भी मांस खाना छोड़ दिया।

जोधपुर के राव सांतल जाम्भोजी के उपदेशों से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने राज्य के विश्णोईयों को सर्वथा कर–मुक्त करने का निर्णय किया। परन्तु जाम्भोजी राव सांतल के इस निर्णय से सहमत नहीं हुए। अंत में राव सांतल ने विश्णोईयों की आमदनी का पाँचवा हिस्सा लेना स्वीकार किया।

जाम्भोजी के प्रादुर्भाव के समय राजस्थान में नाथपंथी योगियों का व्यापक प्रभाव था। पूरे राजस्थान में उनका अत्यधिक प्रसार था। उत्तर भारत में वैष्णभक्ति के विकास में नाथपंथी बहुत बड़ी बाधा थे। जब लोगों पर नामपंथियों को प्रभाव कम पड़ने लगा तो लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग को कबीर ने सम्भाला था। यही कार्य जाम्भोजी ने राजस्थान में किया। जाम्भोजी को लोगों को नामपंथियों के आडम्बर से छुड़ाने में कड़ा संघर्ष करना पड़ा। जाम्भोजी की कई बार नाथों से टक्कर हुई। अंत में विष्णुभक्तों की

जीत हुई और आडम्बर के स्थान पर जाम्भोजी के दैनंदिन जीवन तथा उसकी आवश्यकताओं को महत्व दिया और उन्हें समझदारी के साथ ही नहीं, अडिग आस्था और विश्वास के साथ धर्म का गौरव प्रदान किया।

ग्रन्थ

1. डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ.सं. 11।
2. वही, पृ.सं. 22।
3. डॉ. दशरथ शर्मा, पंवार वंश दर्पण, प्रस्तावना।
4. भारत के प्राचीन राजवंश, भाग 1, पृ. 87 तथा राजा भोज, पृ. 16।
5. साहबरामजी राहड़, जंभसार, पृ. 5।
6. डॉ. गौरीशंकर ओझा, राज्य का इतिहास, पृ. 70।
7. ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य करनी चरित्र, पृ. 130। सिद्ध चरित्र पृ.6।
8. स्वामी ब्रह्मानंदजी, श्री जम्भदेव चरित्र भानु, पृ. 1।
9. सुरजनदास, जांभोजी का जीवन चरित्र, पृ. 1।
10. जंभसार चतुर्थ, पृ. 64।
11. जंभसार चतुर्थ, पृ. 65।
12. जंभसार चतुर्थ, पृ. 71।
13. जंभसार चतुर्थ, पृ. 62। सुरजनदासजी अवतार चरित।
14. साहबरामजी, जंभेश्वर महाराज का जीवन चरित्र, पृ. 4।
15. साधु शालिग्राम, जंभेश्वर धर्म दिवाकर, पृ.1।
16. सुरजनदासजी, अवतार चरित, पृ. 2।